IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 27, Issue 8, Series 1 (August. 2022) 77-81
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

भारतीय राजनीति में नैतिकता एवं मूल्य

डॉ. अशोक आर्य
सह आचार्य , राजनीति विज्ञान , बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय , अलवर (राज.) 301001

शोध सारांश
भारतीय राजनीतिक चिंतन की परंपरा पश्चिमी राजनीतिक चिंतन के उदय से भी पुरानी है। भारत में सरकार की राजशाही और गणतांत्रिक प्रणाली प्राचीन ग्रीक शहर–राज्यों में प्रचलित की तुलना में भी पहले विकसित हुई थी, और भारतीय विचारकों ने प्राचीन ग्रीस के महान राजनीतिक दार्शनिकों– सुकरात, प्लेटो और अरस्तू की तुलना में बहुत पहले राज्य कला और राज्य कौशल का अध्ययन किया था। पेश किया। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार को आम तौर पर संज्ञा हिंदू राजनीतिक विचार दिया जाता है। इसकी परंपरा वैदिक युग से चली आ रही है, जो लगभग दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व की है। यह परंपरा चौदहवीं शताब्दी ईस्वी तक जारी रही, जब यहां मुस्लिम शासन पूरी तरह से स्थापित हो गया था। ब्राह्मणवाद के उदय के दौरान प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन अपने मूल रूप में विकसित हुआ। ब्राह्मणवाद हिंदू धर्म का सबसे पुराना रूप था, जिसकी उत्पत्ति वैदिक परंपरा से हुई थी। इसमें उन कर्मकांडों का महत्व निहित है जिन्हें पूरा करना ब्राह्मणों का कर्तव्य था। इसलिए ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को पूरे समाज में स्वीकार किया गया। बाद में जब नए धार्मिक आंदोलन, नई जातियां, श्रेणियां और संघ उभरे और जब देश को विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा, तो इन समस्याओं को हल करने के लिए भारतीय चिंतन में नए विचार उभरे। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र', 'शुक्रनीति' और अन्य कई ग्रंथों ने इन नई परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार करने के लिए उपयुक्त निर्देश दिए हैं।
मुख्य बिन्दु :– नैतिक मूल्य , नैतिकता , समाज , कौटिल्य का अर्थ शास्त्र , धर्म दंड एवं निष्कर्ष ।

परिचय :–

प्राचीन भारत की राजनीतिक संस्थाओं और उनसे जुड़े चिंतन के अध्ययन के लिए अनेक स्रोतों से सहायता ली जा सकती है। इनमें वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, पुराण, महाकाव्य (रामायण और महाभारत), स्मृतियां, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामंदक का नीतिसार, शुक्रनीति तथा कुछ साहित्यिक कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।1

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद–ये चार वेद भारत के प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथ माने जाते हैं। इन ग्रंथों में विविध संदर्भों के अंतर्गत राज्य एवं शासन की उत्पत्ति, शासन के स्वरूप, राजा की शक्तियों, राजा और मंत्री तथा राजा और प्रजा के परस्पर संबंध का विवेचन देखने को मिलता है। वस्तुतः सारे वेद प्राचीन भारतीय जीवन के बारे में विश्वस्त जानकारी के स्रोत माने जाते हैं। अतः इनसे तत्कालीन राजनीति से संबंधित जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।

वैदिक मंत्रों और संहिताओं की गद्य टीकाएं ब्राह्मण ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। अतः वेदों की तरह ब्राह्मण ग्रंथों में भी राजनीतिक चिंतन के कुछ संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिए, 'शतपथ ब्राह्मण' और 'ऐतरेय ब्राह्मण' के अंतर्गत इस तरह की पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। उपनिषदों में साधारणतः आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तृत भंडार निहित है। परंतु इनमें प्रसंगवश राजनीतिक चिंतन के संकेत भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'छांदोग्य उपनिषद्' में राजनीति को 'क्षात्र विद्या' की संज्ञा दी गई है और उसका यथेष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पुराणों में साधारणतः देवी–देवताओं और विष्णु के अवतारों की कथाओं का रोचक विवरण धार्मिक श्रद्धा के साथ प्रस्तुत किया गया है। परंतु कुछ पुराणों में नंद वंश, मौर्य वंश और गुप्त वंश से जुड़े ऐतिहासिक चरित्रों का वृत्तांत भी मिलता है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचार गुंथे हुए हैं।

महाकाव्यों की परंपरा में महर्षि वाल्मीकि त रामायण और महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का विस्तृत चरित्र चित्रण मिलता है। महाभारत के अंतर्गत राजसिंहासन के अधिकार के प्रश्न पर कौरवों और पांडवों के परस्पर विवाद और उनके परस्पर विनाशकारी युद्ध का भव्य विवरण दिया गया है। इसमें भगवान् ष्ण की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। वैसे रामायण और महाभारत दोनों में जगह–जगह राजनीतिक विचार गुँथे हुए हैं, परंतु महाभारत के 'शांति–पर्व' में 'राजधर्म' का बेजोड़ निरूपण है।

स्मृतियाँ भी मुख्यतः धार्मिक ग्रंथ हैं। इनमें 'मनुस्मृति' का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुस्मृति की तरह अन्य प्रसिद्ध स्मृतियों जैसे कि विष्णु स्मृति, नारद स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, बृहस्पति स्मृति, इत्यादि में भी 'दंडनीति', 'राजविद्या' और

'राजधर्म' के सिद्धांतों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। बौद्ध साहित्य के अंतर्गत महात्मा बुद्ध के उपदेशों को तीन प्रसिद्ध ग्रंथों– 'सुत्तपिटक', 'धम्मपिटक' और 'विनयपिटक' के रूप में संकलित किया गया है जिन्हें सामूहिक रूप से 'त्रिपिटक' कहा जाता है। इनके अलावा 'दीघनिकाय' और जातक कथाओं में भी सामाजिक जीवन का रोचक चित्रण मिलता है। इन सब ग्रंथों में जगह–जगह राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।2

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामंदक का नीतिशास्त्र और शुक्रनीति पहले ऐसे प्राचीन ग्रंथ हैं जिनमें मुख्यतः राजनीति से जुड़ी समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। इनसे पहले जितने भी ग्रंथ लिखे गए, उनमें केवल प्रसंगवश राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई थी। राज्यशास्त्र से जुड़े ग्रंथों में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। नीतिशास्त्र से जुड़े ग्रंथ मुख्यतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर ही लिखे गए हैं। इन सब ग्रंथों के अलावा प्राचीन भारत की अनेक साहित्यिक कृतियों में भी अनेक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचार यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं। इनमें कल्हण की 'राजतरंगिणी', बाण का 'हर्षचरित', विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', कालिदास का 'मालविकाग्निमित्र' और सोमदेव का कथासरित्सागर' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

''अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जो हमें धर्म, अर्थ और काम की ओर प्रेरित करता है, और इसकी –सिद्धि में योग देता है। यह उन तत्वों को नष्ट करता है जो धर्म और अर्थ के विरुद्ध हों।'' कौटिल्य– अर्थशास्त्र

किं वा व्योम बिनार्केण किं तोयेन बिना सरः।

किं मन्त्रेण बिना राज्यं किं सत्येन बिना वचः।

सूर्य के बिना आकाश क्या! जल के बिना सरोवर क्या ! मंत्रणा के बिना राज्य क्या! सत्य के बिना वाणी क्या! कथासरित्सागर

भारतीय राजनीति में नैतिकता एवं मूल्य :–

प्राचीन भारत के संपूर्ण चिंतन एवं दर्शन में आत्मा और परमात्मा जैसे आध्यात्मिक विषयों में गहरी अभिरुचि का परिचय मिलता है। यहां ज्ञान को संपूर्ण सृष्टि का नियामक तत्त्व माना गया है, और उसे ईश्वर का साक्षात् स्वरूप कहा गया है। सृष्टि को स्थिर रखने के लिए यह जरूरी है कि उसका प्रत्येक तत्त्व अपने नियत स्थान पर स्थिर रहकर उपयुक्त नियमों का पालन करे। चूंकि मानव समाज सृष्टि की ही एक अभिव्यक्ति है, इसलिए यह जरूरी है कि प्रत्येक मनुष्य अपने नियत स्थान पर स्थिर रहकर अपने अपने कर्तव्यों का पालन करे।

हिंदू चिंतन के अनुसार, जड़ जगत् तो प्रति के शाश्वत नियमों से संचालित होता है, परंतु मनुष्य इच्छा और विचार की क्षमता से संपन्न हैं। अतः मानव समाज को संचालित करने वाले नियमों का ज्ञान प्राप्त करके ही वे अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं। इन नियमों का समुच्चय ही 'धर्म' है, जो सत्य और न्यायोचित का पर्याय है। दूसरी ओर, मनुष्य मोह–माया, लोभ या अहंकार के वशीभूत होकर धर्म के मार्ग से विचलित हो सकते हैं। उन्हें सही रास्ते पर लाने और चलाने के लिए 'दंड' का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

वैसे तो प्राचीन भारत में राजतंत्र के अलावा गुटतंत्र और गणतंत्र भी विद्यमान थे परंतु तत्कालीन राजनीतिक चिंतन में राजतंत्र की प्रधानता देखने को मिलती है। गणतंत्र के अंतर्गत जन–सभाएं या प्रमुख नागरिकों की परिषद्, सार्वजनिक वाद–विवाद के विस्तृत नियम और चुनाव के तरीके प्रचलित थे। ऋग्वेद की एक ऋचा के अंतर्गत जन सभा की भावना को बड़े सुंदर ढंग से व्यक्त किया गया हैः ''तुम्हारे उद्देश्य एक हो, तुम्हारे मन एक हो, तुम्हारे विचार एक हो ताकि तुम सब पूरी तरह एकता के सूत्र में बँध जाओ।''3 परंतु गणतंत्र की भावना की इतनी मुखर अभिव्यक्ति के बावजूद इस दिशा में कोई व्यवस्थित चिंतन उभरकर सामने नहीं आया। गणतंत्रीय प्रणाली के विषय में जो थोड़ा–बहुत चिंतन प्रस्तुत किया गया, वह या तो लुप्त हो चुका है, या फिर कुछ महाकाव्यों, नाटकों और पुराणों के छिटपुट प्रसंगों में बिखरा पड़ा है। दूसरी ओर, अधिकांश प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन राजतंत्र की समस्याओं के साथ जुड़ा है। इनमें राजा के कर्तव्यों, प्रशासन की कला, विभिन्न व्यवसायों के नियंत्रण, अपराध और दंड, कराधान के नियमों, कूटनीति के उपायों और राज्यशिल्प के मूल तत्त्वों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

नीति और मूल्य मुख्य रूप से धर्म और दण्ड से जुड़े हुए हैं :–

'धर्म' और 'दंड' प्राचीन भारतीय राजनीति–चिंतन की आधारभूत संकल्पनाएं हैं। धर्म मानव समाज की अमूल्य निधि है, दंड उसका प्रहरी है। 'दंड' का अर्थ है डंडा जो कि बल प्रयोग का प्रतीक है। 'धर्म' या 'कानून' का पालन कराने के लिए बल प्रयोग की कला 'दंडनीति' है। अतः 'दंडनीति' स्वयं 'राजनीति' का पर्याय है।

अर्थ का सरोकार भौतिक कल्याण के साधनों को बढ़ाने से है :–

काम व्यक्ति को ऐंद्रिय सुख के आस्वादन की कला से परिचित कराता है। मोक्ष से संबंधित चिंतन के अंतर्गत व्यक्ति को परम कल्याण का मार्ग दिखाया जाता है ताकि उसकी आत्मा जन्म–मरण के बंधनों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर सके। धर्म का विवेचन धर्मशास्त्रों का विषय है। अर्थ का विवेचन अर्थशास्त्र में और काम का विवेचन कामशास्त्र में किया गया है। मोक्ष का महत्त्व इन सबसे बढ़कर है, और वह भी धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र का विषय है। वस्तुतः धर्मशास्त्र का विचार क्षेत्र इतना व्यापक है कि हमें आचार्य मनु के राजनीतिक विचार भी 'मनुस्मृति' के अंतर्गत मिलते हैं जिसका मुख्य विषय धर्मशास्त्र है। अर्थशास्त्र के अंतर्गत अर्थ या धन–संपदा के उपार्जन के उपायों का विवरण होना चाहिए। धन–संपदा और समृद्धि अर्जित करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि भूमि पर स्वामित्व स्थापित करके वहां के निवासियों पर अपना शासन स्थापित कर लिया जाए। अतः राज्य स्थापित करने, उसका प्रबंध चलाने और उसकी अभिवृद्धि करने की विद्या को अर्थशास्त्र कहा गया है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इसका भव्य उदाहरण है। वस्तुतः दंडनीति और अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु एक–दूसरे की पूरक हैं।

राजनीति का एक और पर्याय 'राजधर्म' है। महाभारत के शांति पर्व के अनुसार, जिस देश में राजधर्म की अवहेलना की जाती है, वहां संपूर्ण धर्म और पुण्य का विनाश हो जाता है। हिंदू परंपरा के अंतर्गत मानव चरित्र की विभिन्न अवस्थाओं से जुड़े इतिहास को चार युगों में बांटा गया है– सत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। महाभारत के अनुसार, सतयुग में सब लोग पुण्यात्मा थे, तब कोई किसी को कष्ट नहीं देता था। अतः मनुष्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए 'राज्य' जैसी किसी संस्था की आवश्यकता नहीं थी। जब सतयुग का अंत हुआ तब लोभ, लालसा और स्वार्थ ने मनुष्य के मन को घेर लिया और संसार में 'मत्स्य न्याय' की स्थिति पैदा हो गई, अर्थात् जैसे खुले समुद्र में हर बड़ी मछली अपने से छोटी मछली को खा जाती है, वैसे ही प्रत्येक बलशाली मनुष्य अपने से निर्बल मनुष्य को सताने लगा। इस स्थिति के प्रतिकार के लिए, अर्थात् संसार में फिर से शांति व्यवस्था, न्याय और सुरक्षा स्थापित करने के ध्येय से ईश्वर ने 'धर्म' के रूप में उपयुक्त नियमों का निर्माण किया और उसके प्रवर्तन के लिए 'विराजस' नाम के राजा का सृजन किया। इस तरह राज्य का निर्माण घोर अव्यवस्था की जगह पूर्ण व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से किया गया। इसके लिए राजा या राजतंत्र की संस्था का उपयोग किया गया जो 'दंड' या बल प्रयोग की शक्ति से संपन्न था। महाभारत के अंतर्गत राजा को प्रजा की रक्षा का कर्तव्य विशेष रूप से सौंपा गया है।

हिंदू राजनीति–विचारकों के अनुसार, राजा या शासक का मुख्य कर्तव्य 'लोकसंग्रह' है। वस्तुतः 'लोकसंग्रह' का अर्थ है–लोक–कल्याण जो कि ईश्वर का कार्य है। राजा और प्रत्येक कर्तव्य परायण मनुष्य से यह आशा की जाती है कि वह ईश्वर के इस कार्य में सहयोग देगा। अतः राजा को लोक कल्याण की कामना से अपनी संपूर्ण प्रजा में मेलजोल स्थापित करना चाहिए ताकि वे परस्पर सहृदयता अनुभव करते हुए राज्य के प्रति अटूट निष्ठा रख सकें। अर्थात् राजा का कर्त्तव्य अपने प्रजाजनों को ऐसी परिस्थितियां प्रदान करना है। जिनमें वे चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर सकें। प्रजा का चरित्र उन्नत करने के लिए राजा का अपना चरित्र ऊंचा होना चाहिए, क्योंकि प्रजा के चरित्र में राजा के चरित्र की छाप दिखाई देती है–'यथा राजा तथा प्रजा' (जैसा राजा, वैसी प्रजा) ।

राजा को जिस धर्म का प्रवर्तन करना चाहिए, उसके तीन स्रोत माने गए हैंः श्रुतियाँ, स्मृतियाँ और लोकाचार। श्रुतियों, अर्थात् वेदों के अंतर्गत अमूर्त नैतिक सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। स्मृतियों के अंतर्गत मूर्त नियमों का निरूपण किया गया है। लोकाचार के अंतर्गत चिर–प्रचलित प्रथाएं, परंपराएं और रीति–रिवाज आ जाते हैं जिनका आदर करना राजा का कर्तव्य था।5

भारत की सामासिक संस्ति की यह विशेषता थी कि यहाँ शुरू–शुरू में तो ब्राह्मणवाद का वर्चस्व रहा जिसके अंतर्गत ब्राह्मणों की सत्ता क्षत्रिय राजाओं से भी ऊंची थी, क्योंकि राजा अपने ब्राह्मण मंत्री की मंत्रणा से बँधा रहता था। परंतु आगे चलकर यहां विदेशियों का आगमन हुआ। नई जातियों, श्रेणियों, संघों और धार्मिक एवं विधर्मी संगठनों का उदय हुआ, और इन सबको भी हिंदू धर्म में आत्मसात् कर लिया गया। इन नए समूहों को अपने–अपने रीति–रिवाजों के अनुसार अपने काम–काज के संचालन की स्वाधीनता थी, राजा को उनके मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार तभी था जब कोई नियम बहुत स्पष्ट न हो या जनहित को ध्यान में रखते हुए ऐसा हस्तक्षेप जरूरी हो जाए। इस तरह प्राचीन भारतीय राज्य ऐसे स्वायत्त समुदायों के रूप में संगठित था जिनके अपने–अपने रीति–रिवाज और कायदे–कानून थे, संपूर्ण सत्ता राजा या उसके सलाहकारों के हाथों में केंद्रित नहीं थी भिक्खु पारेख का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि ''प्राच्य निरंकुशतंत्र की संकल्पना प्राचीन भारत पर लागू नहीं होती''। प्राच्य निरंकुशतंत्र की संकल्पना परंपरागत चीनी अधिकारितंत्र और रूसी जार के साम्राज्य के संदर्भ में विकसित की गई है जिनमें ये विशेषताएं पाई जाती थीं:

निरंकुश शासक और उसके अनुचरवर्ग के हाथों में शक्ति का केंद्रीकरण समस्त सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों पर ऊपर से नीचे की ओर नियंत्रण

विधि के शासन का नितांत अभाव :–

केंद्रीय सत्ता को किसी भी तरह की चुनौती दिए जाने पर संपूर्ण जन–शक्ति की सहायता से उसका अविलंब दमन

राज्य के संचालन में सैन्य शक्ति की प्रधानता।

प्राचीन भारतीय चिंतन के अनुसार, साधारण परिस्थितियों में राजा को पूरी निष्ठा के साथ धर्म का अनुसरण करना चाहिए। परंतु महाभारत और कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अंतर्गत यह मत प्रकट किया गया है कि असाधारण परिस्थितियों में अर्थात् दुष्ट लोगों के साथ व्यवहार करते समय उसे अनैतिक साधनों के प्रयोग से भी संकोच नहीं करना चाहिए। इस नीति को एक सूक्ति के रूप में व्यक्त किया गया है–'शळे शाठ्य समाचरेत' अर्थात् धूर्तों के साथ धूर्तता का बर्ताव करना चाहिए। महाभारत के शांति पर्व के अंतर्गत भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को यह शिक्षा दी है कि राजा को ''बोलने में मधुर और विनम्र होना चाहिए, परंतु भीतर से तीखी छुरी की तरह निष्ठुर होना चाहिए।'' फिर उसे मौका देखकर ''अपने शत्रु को कंधे पर भी उठा लेना चाहिए, परंतु काम निकल जाने पर उसे मिट्टी के बर्तन की तरह शिलाखंड पर पटक कर तोड़–फोड़ डालना चाहिए।''6 जब युधिष्ठिर ने यह आपत्ति की एक ऐसा व्यवहार सर्वथा अनैतिक होगा, तब भीष्म पितामह ने स्पष्ट किया कि यह व्यवहार दुष्ट, अधर्मी और क्रूर शत्रुओं को वश में करने के लिए ही उपयुक्त होगा, सामान्य परिस्थितियों में नहीं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भरद्वाज के इस मत को उद्धृत किया गया है कि राजकुमार कर्कट. अर्थात् केकड़े जैसा हो सकता है जो अपने माता–पिता को भी खा जाता है। ऐसे स्वभाव वाले राजकुमार को बढ़ते ही चुपचाप मसल देना चाहिए। राजा की अपनी स्थिति को सुढ़ करने के ध्येय से कौटिल्य ने विद्रोही राजकुमारों, राजपुरुषों और शत्रुओं को समाप्त करने के लिए दुरभिसंधि का सहारा लेने की सलाह दी है। दुष्ट, अधर्मी और अत्याचारी लोगों के विनाश के लिए उसने तरह–तरह के विष, दवाओं और मंत्र प्रयोगों का सुझाव दिया है। कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि राज–कोष खाली हो जाने पर उसे भरने के लिए राजा मंदिरों की संपत्ति को हड़प सकता है। ध्यान रहे कि ये सारे त्य आपत्ति के समय के लिए ही उपयुक्त हैं, जब मर्यादा का पालन करना संभव नहीं रह जाता–'आपत्काले मर्यादा नास्ति'। अतः ये उपाय आपद्धर्म का अंग हैं, राजधर्म का अंग नहीं हैं। आधुनिक युग के पश्चिमी राजनीतिक दार्शनिक निकोलो मेकियावेली (1469–1527) ने भी दुष्ट लोगों को वश में करने के लिए इससे मिलते–जुलते विचार व्यक्त किए हैं।

निष्कर्ष रू.

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नैतिकता विहीन राजनीति समाज हित एवं लोक कल्याण में कोई कार्य नहीं करती है और व्यक्तिगत लाभ तथा स्वार्थ के लिए कार्य करने के कारण यह अनर्थकारी हो जाती है। इसके निराकरण के लिए अनेक महापुरुषों गांधी, गोखले, तिलक, टैगोर, अरविंद के दर्शन को आत्मसात करना होगा। जब साधन अच्छे होंगे तभी फल अच्छा मिलेगा। यह तभी संभव होगा जब राजनीति को नैतिक आधार प्राप्त होगा। महात्मा गांधी कहते हैं कि ''जो राजनीति धर्म विहीन है वह मृत्यु जाल के समान है और आत्मा को पतन के गर्त में धकेल देती है।'' आगे कहते हैं ''राजनीति वहीं तक वरेण्य है जहां तक वह नैतिकता की कसौटी पर खरी उतरती है अन्यथा उससे किनारा कर लेना चाहिए।'' समाज हित में ही राजनीति की जाती है इसलिए राजनीति में नैतिकता एक आवश्यक तत्व है। इसलिए यह कहा जाता है कि नैतिकता विहिन राजनीति से समाज का कल्याण नहीं हो सकता। नैतिकता के खत्म हो जाने का अर्थ है व्यक्तिगत स्वार्थ का बढ़ जाना और उसके लिए हर प्रकार के काम को अंजाम देना। यह दुर्भाग्य ही है कि आज की राजनीति का नैतिकता से जुड़ाव कम होता जा रहा है और इस कारण शुचिता की राजनीति भी समाप्त होती जा रही है। राजनीति की गलत ढंग से व्याख्या और उसमें उचित अनुचित का फर्क गायब हो गया है। इससे सामाजिक उद्देश्यों को आघात पहुंचा है जिससे लोकतंत्र कमजोर हुआ है। आधुनिक समय में न तो राजनीति में नैतिकता रह गई है और न ही नेताओं में नैतिक साहस रह पाया है। अनेक समस्याएं जैसे महंगाई, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अराजकता, आर्थिक असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, नैतिकता विहिन राजनीति की देन है। राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण, सत्ता प्राप्ति के लिए अनुचित साधनों का प्रयोग, तथा अनेक घोटालों की वजह से नैतिकता भी लज्जित हुई है। भारतीय राजनीति में नैतिकता एवं मूल्यों का अध्ययन करने के उपरांत हमें विदित होता है कि राजनीतिक नेतृत्व वर्ग के आचरण के बारे में चर्चा करते समय हमें तीन शब्दों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। राजनीति नेतृत्व वर्ग का आचरण, नियम, कानून, दिशा–निर्देश, कोड अफ कण्डक्ट, कोड अफ इथिक्स आदि के अनुरूप होना चाहिए। राजनीति नेतृत्व वर्ग का आचरण लोकतंत्र के आधारभूत मूल्यों जैसे–सत्यनिष्ठा, भेदभाव रहित, गैर–तरफदारी, वस्तुनिष्ठता, कमजोर वर्गों के प्रति परानुभूति, सहिष्णुता, करूणा आदि से युक्त होना चाहिए। राजनीति नेतृत्व वर्ग का आचरण जनोन्मुख, लक्ष्योन्मुख, परिणामोन्मुख, कल्याणोन्मुख होना चाहिए। राजनीति नेतृत्व वर्ग का ऐसा आचरण होने पर ही सुशासन एवं नैतिक शासन की स्थापना की जा सकती है।

संदर्भ :

1ण जौहरी, पी. डी. एवं पाठक, पी.डी. : 'भारतीय शिक्षा की समस्याएँ', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1973.

2ण सुरज, नरेन : 'बुद्धिष्ट सोशल एंड मोरल एजुकेशन', प्राइमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1994.

3ण पाण्डे, विमल चन्द्र : 'महापरिनिर्वाण, सूत्र दीर्घ 203, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्तिक इतिहास', सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद ,1985.

4ण पाल, हंसराज : 'पाठ्यचर्या आधार एवं सिद्धान्त', स्कालर्स पब्लिशिंग हाउस, इन्दौर,1988.

5ण चोबे, सरयु प्रसाद : 'हमारी शिक्षा समस्याएँ', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1983.

6ण पाण्डे, गोविन्द्र चन्द्र : 'बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास', हिन्दी समिति लखनऊ पब्लिकेशन, लखनऊ, 1963.

7ण पारीक, मथुरेश्वर : 'उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षण', जयपुर प्रकाशन, जयपुर.

8ण श्रीवास्तव, के. सी. : 'प्राचीन भारत का इतिहास व संस्ति', यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद ,दशम संस्करण, 2005.

9ण हिरियन्ना, एम. : 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा', राज कमल प्रकाशन, प्रा. लि, नई दिल्ली.

10ण दाधीच, नरेश : 'समसामयिक राजनितिक सिद्धांत', रावत पब्लिकेशंस, जयपुर 2015 .

11ण भारद्वाज आर. के. : 'डेमोक्रेसी इन इण्डिया', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1980.

12ण मेसन, आर. एच. पी. : 'जापान फर्स्ट जनरल इलेक्शन', यूनिवर्सिटी अफ कैम्ब्रिज, ओरियन्टल पब्लिकेशन, 17 अक्टूबर, 1996.

13ण रय, मीनू : 'इलेक्शन 1998, ए कम्युनिटी इन कोइलेशन', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

14ण राना, एम. एस. : 'इण्डिया वेट लोक सभा एण्ड विधान सभा इलेक्शन पोल एनलिसिस', बी.आर. पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, 1998.

15ण सैनी, आर. डी. : 'घोषणा–पत्र की कसौटी पर सरकार', वाणीपुरम, जयपुर.